

सन्त काव्य की सामान्य विशेषताएँ

सन्त काव्य में वाटिका का श्रम साध्य अथवा कृत्रिम सौन्दर्य नहीं, उसमें वनराजि की प्रकृति-श्री है। इस काव्य में आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति हुई है पर वह जन-जीवन में डूबी हुई अनुभूतियों से संपन्न है। सन्त काव्य ने अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रभाव को आत्मसात किया है किन्तु इसमें धर्म अथवा साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं बल्कि जन-भाषा में उसका मर्म है। इस काव्य में जन-जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति अलंकारविहीन सीधी-सादी भाषा में है जहां पग-पग पर स्वाधीन चिन्तन प्रतिफलित हुआ है। सन्त साहित्य साधना, लोक-पक्ष तथा काव्य-वैभव, सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। नाथ संप्रदाय की पद्धति शास्त्रीय थी और साधना व्यक्तिगत थी किन्तु सन्त संप्रदाय की पद्धति स्वतंत्र और साधना सामाजिक थी। सन्त कवियों की विचारसरणि निजी अनुभूतियों पर आद्धृत है, अतः उसमें दर्शन की शुष्कता न होकर काव्य की कोमलता है। सन्त साहित्य में एक अद्भुत विचारगत साम्य है। निम्नांकित पंक्तियों में सन्त साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जायेगा—

(1) निर्गुण ईश्वर में विश्वास—सभी सन्त निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखते हैं। ये कवि सूर और तुलसी के समान सगुण और निर्गुण के समन्वयवादी नहीं। इन्होंने ईश्वर के सगुण रूप का विरोध किया है। कवि का कहना है—

दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना,
रामनाम का मरम है आना।

सभी वर्णों और समूची जातियों के लिए वह निर्गुण एकमात्र ज्ञानगम्य है। यह अविगत है। वेद, पुराण तथा स्मृतियां जहां तक नहीं पहुंच सकतीं—

निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।

वह ब्रह्म पुहुप वास से पातरा है, अजन्मा और निर्विकार है। यह सारा संसार उस अक्षय पुरुष रूपी पड़ के पत्ते के समान है। वह ईश्वर घट-घट में विराजमान है। कबीर का कहना है जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है और वह व्यर्थ ही उसे वन में दूढ़ने के लिए भटकता फिरता है, उसी प्रकार राम घट-घट व्यापी है, उसे बाहर दूढ़ने की आवश्यकता नहीं। प्रियतम इनके दिल में है, अतः उसे पातियां लिखना व्यर्थ है। प्रायः प्रत्येक सन्त ने अपने मत के प्रचारार्थ अपना-अपना संप्रदाय चलाया।

(2) बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध—सन्त कवियों ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद पर अविश्वास प्रकट करते हुए इस भावना का निर्भङ्गतापूर्वक खंडन किया है। कारण, एक तो शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव शेष था और दूसरे इसकी राजनीतिक आवश्यकता भी थी। शासक वर्ग मुसलमान एकेश्वरवादी था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों में विद्वेषाग्नि को शांत करके उनमें एकता की स्थापना के लिए इन्होंने एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया और बहुदेववाद का घोर विरोध किया—

यह सिर नवे न राम कूं, नहीं गिरियो टूट।

आन देव नहिं परसिये, यह तन जाये छूट।। —चरनदास

सन्तों का विश्वास है कि अवतार जन्म-मरण के बंधन में ग्रस्त है। वे भी परम ब्रह्म की भक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सभी सन्तों ने निन्दा की है। और उन्हें मायाग्रस्त कहा है। उनका भी कर्ता निराकार परम ब्रह्म है—

अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।

त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।। —कबीर

(3) सद्गुरु का महत्त्व—गुरु को भगवान् से भी अधिक महत्त्व देना सन्त कवियों की एक सर्वमान्य विशेषता है। कबीर के शब्दों में—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाइ।

बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताइ।।

इन कवियों का विश्वास है कि राम की कृपा भी तभी होती है जब गुरु की कृपा होती है। यों तो गुरु की महत्ता सगुण भक्त कवियों में भी मिलती है पर अन्तर यह है कि सन्त कवि गुरु को परमेश्वर भी मान लेते हैं। सारांश यह है कि निर्गुण भक्त कवि सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्त्व देते हैं।

(4) जाति-पाति के भेद-भाव का विरोध—सभी सन्त कवि जाति-पाति और वर्ग-भेद के प्रबल विरोधी हैं। ये लोग एक सार्वभौम मानव धर्म के प्रतिष्ठापक थे। इनकी दृष्टि में भगवद्भक्ति में सबको समान अधिकार है—

जाति पाति पूछे नहिं कोई,

हरि को भजे सो हरि का होई।

इसका विशेष कारण यह है कि एक तो सभी सन्त निम्न जाति से सम्बन्ध रखते थे—कबीर जुलाहे थे, रैदाम चमार थे। इसके अतिरिक्त भक्ति आंदोलन भी जाति-भेद एवं वर्ग-भेद को तुच्छ

उत्तरा रहा था। इसके साथ इन सन्तों को हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा भी करनी थी। इस धेरे के निवारणार्थ इनके स्वर में अत्यन्त प्रखरता और कटुता आई—

जो इन दाउन राह न पाई।
हिन्दुजन की हिन्दुआई देखी, तुकरान की तुकराई॥ —कबीर

इसी प्रकार है—

तू ब्राह्मण ही काशी का जुलाहा चीन्हा न मोर गियाना।
तू जो बापन बापनी जाया और राह है क्यों नहीं आया॥

(5) रुढ़ियों और आडम्बरों का विरोध—प्रायः सभी सन्त कवियों ने रुढ़ियों, मिथ्या आडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इसका कारण इन लोगों का सिद्धों और नाथपरियों से प्रभावित होना है। वे लोग तन्त्राकीन समाज में पाई जाने वाली इन कुप्रवृत्तियों का कड़ा विरोध कर चुके थे। इन्होंने मूर्तिपूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, गेरा, नमाज, हज आदि विधि-विधानों, बाह्य आडम्बरों, जाति-पाति के धेरे आदि का डटकर विरोध किया है। प्रायः इन्होंने अपने युग के वैष्णव संप्रदाय को छोड़कर शेष सभी धर्म संप्रदायों की कटु आलोचना की है, जैसे—

बकरी पाती छात है, ताकी काढ़ी छात।
जे जन बकरी छात है, तिन को कौन हवात॥
काँकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ सुदाय॥
पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहार।
ताते वह चक्की भली पीस छाया संसार॥

कदाचित् इस भर्त्सनामय खण्डनात्मकता के कारण कबीर को सिकन्दर लोधी द्वारा दी गई यन्त्रणाओं को भी सहना पड़ा और इसी कारण इनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों चिद गये थे।

(6) रहस्यवाद—सन्त संप्रदाय में प्रेमासक्ति और रहस्यमयता की प्रवृत्तियाँ विट्टल संप्रदाय से आईं। प्रणयानुभूति के क्षेत्र में पहुँचकर ये खंडन-मंडन की प्रवृत्ति को भूल जाते हैं और इनका मूढत एव पेशल हृदय तरल हो जाता है। विरहानुभूतियों की अभिव्यक्ति में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। सन्त काव्य में मुख्यतः अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई जिसे रहस्यवाद की भी संज्ञा दी गई है। साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। सन्तों का रहस्यवाद शक्ति के अद्वैतवाद से प्रभावित है—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कयौं गयानी॥

कहीं पर इनके रहस्यवाद पर योग का भी स्पष्ट प्रभाव है जहाँ कि इंगला, पिंगला और महश्चदन कमन आदि प्रतीकों का प्रयोग है। उपयुक्त दोनों प्रकार की ब्रह्मानुभूति योगात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत आयेगी। इनमें विशुद्ध भावात्मक रहस्यवाद भी मिलता है, जहाँ प्रणयानुभूति की निश्चल अभिव्यक्ति हुई है—

आई न सकी तुञ्ज पै, सकूँ न तुञ्ज बुलाइ।
जियरा यों ही लेहुगे विरह तपाइ तपाइ॥

कुछ विद्वानों ने इनके रहस्यवाद को सूफी मत से प्रभावित माना है किन्तु हमारे विचारानुसार इस दिशा में सुफियों का कोई प्रभाव नहीं है। इन दोनों की प्रणय-भावना में शैविक अन्तर है, जिसमें साध्य की अपेक्षा वैश्य अधिक है। सन्तों का रहस्यवाद विलकुल भारतीय परम्परा के अनुकूल है।

(7) भजन तथा नाम-स्मरण क विषय में सभी सन्त कहते हैं कि वह मन ही मन में होना चाहिए। प्रकट में न हो—

सहजो सुपरिन कीजियै हिरदै माहिं लिपाइ।
होठ होठ सूँ ना हितै, सकै नहीं कोइ पाइ॥

इन लोगों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नाम-स्मरण को परमावश्यक माना है। वेद-शास्त्र इस संबंध में निरर्थक हैं—

पोधी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पढ़ित भया न कोई।
दाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पढ़ित होइ॥

(8) शृंगार वर्णन एवं विरह की मार्मिक उक्तियाँ—सन्त काव्य में शृंगार तथा शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है। प्रणय की दोनों अवस्थाओं—संयोग और वियोग का अत्यंत कलात्मक वर्णन हुआ है। उपदेशपरक मुक्तियों में शांत रस की व्यंजना हुई है। उपदेश में कड़ी-कड़ी इनका स्वर बहुत ही कर्कश हो गया है किन्तु वहाँ भी लोक-संघर्ष की भावना निहित है। सन्त वाणियों का काव्य पक्ष उनकी प्रणयव्यक्तियों में ही यथार्थ रूप में निहार पाया है। इस प्रसंग में इनके व्यक्तित्व की सारी अस्पष्टता और स्थिता धुल जाती है। मोचे की कुछ पंक्तियाँ श्रद्धा हैं। इनमें मूर जैसा रस तथा मीर जैसी विरह की तीव्रता है—

विरहिन ऊभी पंध सिर पंधी बूझै घाड़।
एक शब्द कहि पीव का कबर मिलेंगे आइ॥

आई न सकी तुञ्ज पै, सकूँ न तुञ्ज बुलाइ।
जियरा यों ही लेहुगे विरह तपाइ तपाइ॥

सन्त साहित्य में संयोग पक्ष के अन्तर्गत स्थावर-जन्मानुसंग, प्रिय-मिलनातुरता, आगतपतिका का हर्षोल्लास, प्रथम समागम-भीता नवोदा की लज्जा, रस-रंग में एकात्मकता, स्वाधीनपतिका का सहज दर्प, अभिसारिका की मिलनोत्कटा, वासकमन्त्रा की प्रिय प्रतीक्षा, झुला झुलना आदि का हृदय-वर्जक वर्णन मिलता है। इस काव्य में वियोग पक्ष में प्रवक्ष्यत् पतिका का प्रिय को विदेश गमन में रोचना, विरह-जनित काम-दशाओं का वर्णन, काम आदि के दाग प्रियतम का संदेश-प्रेरण आदि उल्लिखित हैं। अस्तु! कबीर आदि सन्तों का शृंगार रस वाह लौकिक हो अथवा अलौकिक, उसमें एक अनुपम रस है। वह अपने लौकिक रूप में घर-गृहस्थियों के लिए त्रितना आह्लादक है, अपने अलौकिक रूप में वह उनना ही मुमुक्षुजनों के लिए आनन्ददायक है। इनका शृंगार उनके (सन्तों) व्यक्तित्व, धर्म और दर्शन के समान कुछ विलक्षण तथा निराना है। एक ओर जहाँ वह अपने परिष्कृत रूप में लोक-मीमाओं को पृता है तो दूसरी ओर वह उच्चप्रयोग की बलवती प्रेरणा भी देता है। उसमें दिव्य-रस की आर्द्रता है, वासना की आविर्भाव नहीं।

(9) लोक-संग्रह की भावना—इस वर्ग के सभी कवि पार्थिवीक जीवन व्यतीत करने वाले थे, नाथपरियों की भाँति योगी नहीं थे। यही कारण है कि इनकी वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता है, सन्तों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है। सन्तों ने

आत्म-शुद्धि पर बहुत बल दिया है किन्तु वह भी समाज को दृष्टि में रखकर चली है। नाथ संप्रदाय की साधना व्यक्तिगत और पद्धति शास्त्रीय थी, जबकि सन्तों की साधना सामाजिक और पद्धति स्वतंत्र है। जहाँ एक ओर ये लोग, सन्त कवि और भक्ति आंदोलन के उन्नायक हैं वहीं समाज-सुधारक भी। आलोचकों का कबीर को अपने युग का गांधी युग कहना सर्वथा उपयुक्त है। सन्तों ने कृष्ण-कवियों के समान समाज और राजनीति के प्रति आंखें नहीं मूंद रखी थीं। सन्त काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित है। कर्मण्यता इनकी वाणी का सार है।

(10) नारी के प्रति दृष्टिकोण—सन्त कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है। उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं। कबीर का कहना है कि—

नारी की झाई परत अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कहा गति नित नारी के संग ॥

आश्चर्य का विषय है कि जहाँ एक ओर इन्होंने नारी की इतनी निन्दा की है, वहीं दूसरी ओर सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। कबीर का कहना है—

पतिव्रता मैली भली, कानी कुचित कुरूप ।
पतिव्रता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥

लगता है पतिव्रता का आदर्श उनकी साधना के निकट पड़ता था। सन्तों में एक के प्रति आसक्ति और शेष के प्रति विरक्ति, असीम प्रेम, साहस और त्याग आदि की जो भावनाएं हैं, उनसे वे प्रभावित थे। उन्होंने नारी के कामिनी रूप को माया माना है और इसे निन्दनीय कहा है। सभी सन्त जीवन में सत् पक्ष के ग्रहण के पक्षपाती थे और असत् से उन्हें उत्कट घृणा थी। यही कारण है कि वे दुर्जन, खर और शाक्तों की भरसक निन्दा करते हैं।

(11) माया से सावधानता—माया से सावधान रहने का उपदेश सभी कवियों ने दिया है। क्योंकि रमैया की दुल्हन ने सब को बाजार में लूट लिया है और ब्रह्मा, विष्णु महेश भी उसी के वशीभूत हैं। यह भगवान् से मिलने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। यह माया महाटगिनी है। इसने मधुर वाणी बोलकर अपनी तिरगुन फांस में सबको फंसा लिया है।

(12) भाषा एवं शैली—इनके काव्य में मुख्यतः गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। गीति काव्य के सभी तत्त्व—भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इनकी वाणी में मिलते हैं। हां, उपदेशात्मकता, पदों में गीति-माधुर्य के स्थान पर वैदिकता आ गई है। इनके अतिरिक्त इन्होंने साखी, दोहा, चौपाई की शैली का भी प्रयोग किया है।

“कागद मसि छूयो नहीं कलम गह्यो न हाथ” उक्ति प्रायः सभी सन्त कवियों पर चरितार्थ होती है। यह लोग अशिक्षित थे, अतः बोलचाल की भाषा को भी इन्होंने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। साहित्यिक भाषा के प्रयोग में ये अक्षम थे। सन्त लोग अपने मत का प्रचार करने के लिए इधर-उधर भ्रमण करते रहते थे, अतः इनकी भाषा खिचड़ी या सधुक्कड़ी हो गई। इसमें अवधी, ब्रज भाषा, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण हो गया है।

इनकी भाषा में बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती संप्रदायों से लिये। उदाहरणार्थ—शून्य, अनहद, निर्गुण, सगुण और अवधूत आदि। नाथ पंथियों द्वारा प्रयुक्त डंगला, पिंगला आदि शब्दों का भी इन्होंने यथावत प्रयोग किया है।

इनकी भाषा आडम्बरविहीन सरल है। इन्होंने उसे कहीं भी आलंकारिता से लादने का प्रयत्न नहीं किया है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमें काव्योचित सभी गुण आ गये हैं।

अभीष्ट भावों की अभिव्यक्ति बहुत ही कलात्मक बन पड़ी है। अक्खड़ साधुओं के किसी भी विचार को अभिव्यक्त करने में भाषा ने इन्कार नहीं किया।

सन्त काव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बन पड़ा है। जिस युग में इस काव्य की सृष्टि हुई वह अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था। सन्तों की पीयूषवर्षिणी उपदेशमयी वाणी ने उसमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की। सन्त संप्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यावहारिक तथा विश्वासमय रूप जन-भाषा में उपस्थित किया जो कि विश्व धर्म बन गया और वह अब भी जन-जीवन में पुनः जागरण का पावन संदेश दे रहा है। सन्त साहित्य ने जन-जीवन को धर्म-प्रवण एवं आशामय बनाया। इस दृष्टि से सन्त साहित्य का सांस्कृतिक मूल्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं।

काव्य की दृष्टि से भी सन्त साहित्य का अपना अलग महत्व है। अपनी अनुभूतियों को सहज स्वाभाविक भाषा में अभिव्यक्त करके उन्होंने काव्य के सच्चे स्वरूप का उद्घाटन किया। यदि सत्य की अभिव्यक्ति उत्तम कला का मापदंड हो तो सन्त काव्य अपनी कतिपय न्यूनताओं के रहते हुए भी काव्य कला की कसौटी पर पूरा उतरता है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "सच्चे कवि की वाणी में अभिव्यक्ति के साधन स्वतः प्रस्फुटित हो जाते हैं। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण इन कवियों का साहित्य है। 'भाषा कैसी ही हो भाव चाहिए मित्त' की उक्ति सन्त काव्य पर पूर्णतः चरितार्थ होती है।" सन्तों की वाणी में जो उपदेश है वह केवल दर्शन का विषय न होकर जीवन रस से ओत-प्रोत है। उसमें अनुभूति सौष्ठव और जीवन का अमर संदेश है। आत्मिक रस आशावाद और आत्माभिव्यक्ति की जीवन्त शक्तियां सन्त वाणी में निहित हैं। सन्त कवियों ने साहित्य को सत्य, सौन्दर्य और शिव से संपन्न किया है।